DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal **(2014), 3, 07-09**

वैदिक यज्ञीय उपकरण : प्रतीकात्मक दृष्टि

सुमन शर्मा एवं नीतू सक्सैना

सारांश

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म – यज्ञ एक सामान्य कर्म नहीं प्रत्युत सब कर्मों में श्रेष्ठतम कर्म माना गया है। यज्ञ कर्मकाण्ड मात्रा नहीं, प्रत्युत जगत् प्रपञ्च हेतु प्रजापति द्वारा सम्पादित गूढ़ सृष्टि रहस्य का द्योतक है। यही ब्रह्माण्ड का केन्द्र बिन्दु एवं उद्भवस्थल है। निश्चयेन यज्ञ की सभी विधियाँ अथवा कृत्य एवं उनमें प्रयुक्त उपकरण, पात्रादि सभी लौकिक जगत् की वस्तुएँ न होकर प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों के प्रतीक हैं, जो ब्राह्मण साहित्य में प्रतिपादित यज्ञों में प्रयुक्त उपकरणो की प्रतीकात्मक व्याख्या से स्पष्ट है, उदाहरणार्थ – जल, अनस्, कृष्णाजिन, जुहू, उपभृत, स्रुवा, यूप, उलूखल–मुसल, शूर्प, अग्निहोत्राहवणी, वेदी, बर्ही इत्यादि। यज्ञ की इसी प्रतीकात्मकता के कारण दर्शपौर्णमास को भी तैत्तिरीय संहिता में देवरथ कहा गया है – *एष वै देवरथो यद्दर्शपूर्णमासौ।* अतः यज्ञ प्रकृति, सृष्टि–प्रक्रिया और आत्मयाग का प्रतीक है। कालान्तर में कर्मकाण्ड के प्रभाव के कारण इसका सूक्ष्म रूप तिरोहित हो गया और स्थूलरूप अवशिष्ट रहा। यज्ञ–प्रक्रिया वैदिक दर्शन को समझने, शाश्वत सत्य को प्राप्त करने और परमात्मा को प्राप्त करने का साधन है। वैदिक ऋषियों ने जिस परमसत्य का दर्शन किया उसी को हमने अपने जीवन में उतारना है और उसी के माध्यम से अपने समाज का नव निर्माण करना है। प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से यज्ञ के बृहद आयाम को धरण करते हुए केवल प्रतीकात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का प्रयास किया है। संसार के सभी धर्मों में यज्ञ किसी न किसी रूप में सदैव प्रचलित रहा है और रहेगा। यज्ञ ही विविध–विधाओं का मूलाधर है।

कूट शब्द : यज्ञीय उपकरण

यज्ञ भारतीय संस्कृति के आधरभूत तत्त्वों में से एक है। यह कहना अधिक ठीक है कि यज्ञ भारतीय संस्कृति का प्राण है। आर्य मानव जब माता के गर्भ में होता है, तभी यज्ञ द्वारा संस्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है। यज्ञ के वातावरण में ही वह जन्म लेता है, यज्ञ द्वारा ही पालित–पोषित होता है, यज्ञ में ही अपना समग्र जीवन व्यतीत करता है, अन्त में यज्ञ द्वारा ही इहलोकलीला को समाप्त करता है। जीवन में उसे दैनिक अग्निहोत्र, पंचयज्ञ, षोङश संस्कार तथा अन्य कई श्रौत यज्ञ तो करने होते ही हैं, पर शास्त्राकारों ने यहाँ तक कहा है कि वह अपने सम्पूर्ण जीवन को ही यज्ञरूप समझे, उपनिषद् में लिखा है– *पुरुषो वाव यज्ञः* (छान्दोग्योपनिषद्, 3/16)।

मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है। उसकी आयु के जो प्रथम चौबीस वर्ष हैं वे मानो प्रातः सवन हैं, अगले चौबीस वर्ष माध्यन्दिन सवन हैं, अगले अड़तालीस वर्ष तृतीय सवन हैं। मनुष्य को चाहिए कि इसे मध्य में ही आधि–व्याधियों से खण्डित न होने दे।

यज्ञ शब्द का अर्थ

'यज्ञ' शब्द देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थवाली यज् धतु से नङ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। जिस कर्म में परमेश्वर का पूजन, विद्वानों का सत्कार, संगतिकरण
अर्थात् मेल और हवि आदि का दान किया जाता है, उसे यज्ञ कहते हैं (पाणिनीय अष्टाध्यायी, 3/3/90)। ब्राह्मणों में यज्ञों को पाँच अंगों वाला कहा गया है। देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विक् और दक्षिणा को यज्ञ के पाँच अंगों में परिगणित किया है। वस्तुतः ये पाँचों यज्ञ के मूल तत्त्व हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त भी यज्ञ सम्पादन में अनेकानेक वस्तुओं और व्यक्तियों का योगदान अपेक्षित होता है। इन सब अपेक्षित साधनों को तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

यज्ञ के आधार

देवता, मन्त्र और हवि यज्ञ के मूलाधार तत्त्व हैं। इन्हीं के चारों ओर यज्ञ का समस्त ताना–बना बुना जाता है। देवता यज्ञ का सर्वप्रथम तत्त्व है। देवता के अनुसार ही तत्सम्बन्धी मन्त्र और हवि का प्रयोग भी फल–प्राप्ति के लिए साधन रूप में किया जाता है।

यज्ञ के सम्पादक

यज्ञ को सम्पन्न करने में संकल्पकर्ता, अनुष्ठाता और आनुषंगिक कार्यकर्ता इन तीन प्रकार के व्यक्तियों का विशेष योगदान आवश्यक है। यज्ञ करने के अभिलाषी व्यक्ति को यजमान कहते हैं। यह यजमान संकल्पकर्ता मन का ही रूप है (शतपथ ब्राह्मण, 12/8/2/4)। यदि यजमान यज्ञ की आत्मा है तो ऋत्विज् यज्ञ के अंग हैं। तैतिरीय ब्राह्मण (2/3/6) के अनुसार अग्निहोत्र में एक, दर्शपूर्णमास में चार, चार्तुमास्यों में पाँच, पशुयागों में छह, सोमयागों में सात और सत्रों में दस ऋत्विज् होते हैं। कुल चार प्रधान ऋत्विज् हैं, इनके कार्य स्पष्ट हैं –

अध्वर्यु	यह यज्ञ की प्रायः सभी विधियों का अनुष्ठाता है।
होता	ऋग्वेदीय मन्त्रों का यथासमय पाठ करता है।
उद्गाता	यथासमय सामों (मन्त्र) का गान करता है।
ब्रह्मा	यज्ञ का निरीक्षण करता हुआ कुछ विधियों को सम्पन्न करके यज्ञ के न्यूनाधिक दोषों का परिमार्जन करता है।

यज्ञ के उपकरण

यज्ञ के मुख्य उपकरण निम्न प्रकार से हैं –

आज्यपात्र	आहुति के लिए आज्य (घी) रखने के लिए इनका प्रयोग होता है जैसे– आज्यस्थाली, स्रुवा, उपभृत्।
होमपात्र	इनसे आहुति दी जाती है– जुहू, स्रूव, अग्निहोत्राहवणी।
मन्थन उपकरण	अग्नि उत्पन्न के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं, जैसे– अरणि (उत्तरारणि, अध्वारणि) ओवली, इध्म।
यज्ञायुध	वेदि खोदने, हवि पीसने इत्यादि कार्यों के लिए जैसे– स्फय, उलूखल–मुसल, दृषद्–उपल, शूर्प, कृष्णाजिन।
दोहन उपकरण	दूध दोहने के लिए, जैसे – पलाश की शाखा, कुम्भी, रज्जु आदि।
हविपात्र	हवियाँ तैयार करने के लिए – कपाल, चरू स्थाली, पुरोडाशपात्र।
दीक्षाकरण	यजमान व यजमान पत्नी की दीक्षा लेते समय काम आने वाली वस्तुएँ – मेखला, दण्ड आदि।
आसन	कुशा निर्मित आसन बैठने के लिए।
उपयोजन पात्र	आवश्यकतानुसार प्रयुक्त उपकरण, आसन्दी, समिधा, इध्म, प्रोक्षणीपात्र।

यज्ञ की सभी विधियाँ तथा उनमें प्रयुक्त पात्राादि प्रतीकात्मक है। यज्ञ की इसी प्रतीकात्मकता के कारण दर्शपौर्णमास को भी ' तैत्तिरीय संहिता' में देवरथ कहा गया है– *एष वै देवरथो यद्दर्शपूर्णमास* (शतपथ ब्राह्मण, 4/3/4/7) / शतपथ ब्राह्मण के अनुसार संसार में दो ही बातें हैं – अनश्वर और नश्वर। देवता अनश्वर है और मनुष्य नश्वर। अतः यज्ञ व्यक्ति के लिए देवत्त्व प्राप्ति का साधन माना गया है। यज्ञ दैवी है, इसलिए इसमें प्रयुक्त सभी उपकरण अथवा पदार्थ भी दैवी होने चाहिए। मनुष्य नश्वर होने के कारण उससे सम्बद्ध सभी वस्तुएँ भी नश्वर होंगी। ऐसी स्थिति में अनश्वर से सत्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसके लिए सृष्टि के प्रतीक रूप यज्ञ में प्रयुक्त उपकरणादि भी किसी न किसी दैवी तत्त्व के प्रतीक होते हैं, उदाहरणार्थ –

जल

यज्ञ का प्रथम पदार्थ जल है, जो सृष्टि का प्रतीक है, क्योंकि यही सृष्टि का आदि तत्त्व माना गया है। यज्ञ प्रजापति का प्रतीक है, और प्रजापति ने सृष्टि के लिए सर्वप्रथम जल को ही प्रयुक्त किया था। यज्ञ में सर्वप्रथम जल ग्रहण किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण (6/8/2/2) में कहा गया है *आपो वा अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा* अर्थात् जल जगत् की प्रतिष्ठा है। जल सर्वत्र व्याप्त है इसलिए यह व्यापकत्व का भी प्रतीक है (शतपथ ब्राह्मण, 1/1/1/13)। जल पवित्रता का प्रतीक है पवित्रां वाऽआपः (शतपथ ब्राह्मण, 1/2/10)। इसके सेवन से यजमान तो पवित्र होता ही है, साथ ही यज्ञीय उपकरणों को भी जल से पवित्र करके यज्ञ में प्रयोग किया जाता है। जल वज्र का प्रतीक है (तदेव, 3/1/2/6), क्योंकि जल जहाँ अति वेग से गिरता है वहाँ खड्डा कर देता है। अत्यधिक जल वृक्षादि को गला देता है तथा बिना जल के ये नष्ट हो जाते हैं। वज्र के भी खड्डा करना व गिरने पर नष्ट करना ये दो कार्य हैं। इसलिए देवों ने जलरूपी वज्र की खोज की और उसके संरक्षण में यज्ञ अर्थात् सृष्टि का विस्तार किया।

कृष्णाजिन (काला मृगचर्म)

यज्ञ में इसका प्रयोग हवि के कूटने के लिए उलूखल के नीचे बिछाने के लिए किया जाता है। कृष्णमृगचर्म पृथिवी, अन्तरिक्ष और भुलोक का प्रतीक है (तदेव, 1/1/44), क्योंकि इसमें श्वेत, कृष्ण तथा भूरा रंग होता है जो तीन लोकों का प्रतीक है। इसका श्वेत रंग सूर्य का प्रतीक है क्योंकि सूर्य का प्रकाश श्वेत होता है। कृष्ण वर्ण पृथिवी का प्रतीक है क्योंकि पृथिवी कृष्ण वर्ण है इसमें से कृष्ण रश्मियाँ निकलती हैं जो सूर्य के प्रकाश से वास्तविक रूप में दिखाई नहीं देती। कृष्ण एवं श्वेत वर्ण के मध्य में जो भूरा रंग है वह अन्तरिक्ष का प्रतीक है। इसका दैवी नाम शर्म है (तदेव, 6/7/1/6)। शर्म का अर्थ है – कल्याणकारक या मंगलकारी। यज्ञ भी मंगलदायक होता है अतः मंगलरूप यज्ञ का आधार भी कल्याणकारी होना चाहिए, इसलिए इसे यज्ञ रूप माना गया है। यज्ञीय वस्तुओं के कूटने, फटकने वाले कर्म कृष्णाजिन पर किए जाते हैं, जिससे कुछ नीचे गिरे तो इसी पर गिरे और यज्ञ की पूर्णता नष्ट न हो। अतः यह यज्ञ के गौरव तथा इसकी रक्षा का प्रतीक है।

उलूखल–मुसल

उलूखल–मुसल यज्ञायुध काष्ठ से निर्मित पुरोडाश सम्बन्धी हवि आदि के कूटने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उलूखल योनी तथा मुसल शिश्न के प्रतीक हैं (तदेव, 7/5/1/38)। यहाँ ध्यातव्य है कि जिस प्रकार सृष्टि के लिए शिश्न योनि में प्रवेश कर प्रजनन के लिए गर्भाधन करता है उसी प्रकार उलूखल और मुसल संयुक्त होकर यज्ञ–सम्पादन हेतु पुरोडाश के लिए ब्रीहि को कूटकर तैयार करते हैं। कठ संहिता के अनुसार यह विष्णु की नाभि का भी प्रतीक है – *यदुलूखलमुपदधति विष्णोरेव नाभावग्निं चिनुते (कठ संहिता, 31/9)।*

स्रुवा – स्रुच्

स्रुवा खदिर काष्ठ से निखमत अरत्निमात्रा लम्बा तथा गोलाकार मुँहवाला होता है। आज्यस्थाली से आज्य निकालकर जुहू आदि स्रुचों में डालने के लिए छोटे चमस के रूप में इसका प्रयोग होता है। इसकी उपमा शतपथ ब्राह्मण

में पवन से की गई है, अतः यह पवन का प्रतीक है, जिस प्रकार वायु का संचार सभी लोकों में होता है, तथैव स्रुवा सभी स्रुचाओं तक पहुँच जाती है – *तस्मादु स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सञ्चरति (तदेव, 1/3/2/5)*। लौकिक दृष्टि से स्रुवा पुरुष का प्रतीक है तथा स्रुच् स्त्री का। पुरुष के पीछे–पीछे स्त्री गमन करती है उसी प्रकार वेदी पर पहले स्रुवा और बाद में स्रुच का सम्मार्जन होता है (तदेव, 1/3/1/8)। आध्यात्मिक दृष्टि से स्रुवा प्राण का और स्रुच् सभी अंगों का प्रतीक है क्योंकि प्राण सब अंगों में संचार करता है, इसी प्रकार स्रुवा का भी प्रयोग आज्य अथवा जल सभी स्रुचों में लिया जाता है (शतपथ ब्राह्मण, 1/3/2/3)।

वेदी

यह यज्ञ का आधार है जिसमें सभी कार्य सम्पादित किये जाते हैं। यद्यपि यह पात्र नहीं है तथापि इस प्रसंग में इसकी प्रतीकात्मकता का संकेत करना अनुचित नहीं होगा। आधिदैविक दृष्टि से यह पृथिवी का प्रतीक है, क्योंकि इसी वेदी के द्वारा देवों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को राक्षसों से जीता था। राक्षसों का इसमें कथमपि सम्पर्क न हो इसलिए इस पर ओषधिरूप बर्हि बिछाया जाता है। इस वेदी पर पहली तीन रेखाएँ पुनश्च तीन रेखाओं का घेरा छः ऋतुओं का प्रतीक है और पुनः संवत्सर प्रजापति का प्रतीक बन जाता है (शतपथ ब्राह्मण, 1/2/5/12)। प्रथम छोटे से छः व्याहृतियों और दूसरे घेरे में पुनः छः व्याहृतियाँ बारह मासों का प्रतीक है। भौतिक दृष्टि से देखने पर वेदी स्त्री का प्रतीक है अग्नि पुरुष का। वेदों में अग्नि की स्थापना स्त्री में पुरुष रूप रेतस् की स्थापना का प्रतीक है। जिससे सृष्टि–रूप यज्ञ सम्पन्न होता है, अतः यज्ञ प्रकारान्त से सृष्टि का ही प्रतीक है (तदेव, 1/2/5/15)। वेदी स्त्री का प्रतीक है और यज्ञ के साथ देवता ओर विद्वान ऋत्विक् वेदी के चारों ओर विद्यमान रहते हैं, इसलिए स्त्री को कभी नग्न नहीं होना चाहिए, इसकारण इसके उपर बर्हि बिछाया जाता है – *योषा वै वेदिः तामेतद्देवाश्च पर्यासते, ये चेमे ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानाः तष्वेवैनामेतत् पर्यासीनेष्वनग्नां करोति (तदेव, 1/3/3/8)*।

निष्कर्ष

इस प्रकार संहिताओं, ब्राह्मणों ओर आरण्यकों में उपलब्ध यज्ञ पात्रों एवं उपकरणों से सम्बद्ध प्रतीकों के विवेचन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले सभी उपकरण प्राकृतिक सृष्टि–यज्ञ में प्रयुक्त प्राकृतिक अथवा दैवी तत्त्वों के प्रतीक हैं। प्रकृति में चलने वाले प्राकृतिक यज्ञ के आधार पर परिकल्पित है तब निश्चय ही यज्ञ में उपयोगी सभी पात्र या उपकरण की सृष्टि–यज्ञ में काम आने वाले प्राकृतिक तत्त्वों के प्रतीक हैं अथवा दैवीय हैं। यहाँ पर संक्षेप रूप में मुख्य पात्रों या उपकरणों की प्रतीकात्मकता पर विचार किया गया है, इसी आधार पर अन्यों की प्रतीकात्मकता पर विचार अपेक्षित है।

सुमन शर्मा, पी–एच.डी, संस्कृत विशेषज्ञ; **नीतू सक्सैना,** पी–एच.डी, योग विशेषज्ञ, टी. के. डी. एल. परियोजना, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, भारत।

संदर्भ सूची

एष वै देवरथोयद्दर्शपूर्णमास **(शतपथ ब्राह्मण, 4/3/4/7)**।

यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु, भ्वादि 'यज्ञयाचयतविच्छपच्छरक्षो' नङ् प्रत्यय। इज्यते देवपूजनं संगतिदानं च क्रियते यत्र स यज्ञः **(पाणिनीय अष्टाध्यायी, 3/3/90)**।

यज्ञो वै कृष्णाजिनम् **(तदेव, 6/7/1/6)**।

योषा वै स्रुग्र वृषा स्रुवः तस्मात् स्त्रुक् स्त्रीलिंगत्वाद् योषित स्रुवस्तु पुंतिलंगत्वात् सेचनसमर्थः पुमान् **(तदेव, 1/3/1/8)**।

योषा वै वेदिः वृषाग्निः परिगृह्य वै योषावृषाणं शेते। मिथुनमेवैयत्प्रजननं क्रियते **(तदेव, 1/2/5/15)**।

योषा वै वेदिः तामेतद्देवाश्च पर्यासते, ये चेमे ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानाः तष्वेवैनामेतत् पर्यासीनेष्वनग्नां करोति **(तदेव, 1/3/3/8)**।

योनिरुलूखलमुत्तरोखा भवत्यधरमुलूखलमुत्तर ह्यदरमधरायोनिः शिश्नं मुसलं **(तदेव, 7/5/1/38)**।

यदुलूखलमुपदधति विष्णोरेव नाभावग्निं चिनुते **(कठ संहिता, 31/9)**।

मनो यजमानस्य रूपं **(शतपथ ब्राह्मण, 12/8/2/4)**।

पवित्रां वाऽआपः **(शतपथ ब्राह्मण, 1/2/10)**।

पुरुषो वाव यज्ञः **(छान्दोग्योपनिषद्, 3/16)**।

प्राण एव स्रुवः सोऽयं प्राणः सर्वाण्यंगान्यनुसञ्चरति तस्माद् स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सुञ्चरति **(शतपथ ब्राह्मण, 1/3/2/3)**।

स वै त्रि पूर्वं परिग्रहं परिगृहणाति त्रिरुक्तरम् तत् षट्कृत्वः षड्वाऽऋतवः संवत्सरस्य संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः **(शतपथ ब्राह्मण 1/2/5/12)**।

वज्रो वाऽआपः **(तदेव, 3/1/2/6)**।

तस्मादग्निहोत्रस्य यज्ञक्रतो : एक ऋत्विक्, दर्शपूर्णमासयोर्यज्ञक्रतोः । चत्वार, चातुर्मास्यानां यज्ञक्रतोः पञ्च, पशुबन्धस्य यज्ञक्रतोः षड्त्विस इति **(तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2/3/6)**।

तस्मादु स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सञ्चरति **(तदेव, 1/3/2/5)**।

अथ कृष्णाजिनमादत्ते। शर्मासीति चर्म वा एतत्कृष्णस्य तदस्य तन्मानुषं शर्म देवत्रा तस्मादाहं शर्मसति **(तदेव, 1/1/44)**।

अनिरुक्तो वै प्रजापतिः प्रजापतिर्यज्ञः तत्प्रजापतिमेवैतद् यज्ञं युनक्ति **(शतपथ ब्राह्मण, 1/1/1/13)**।